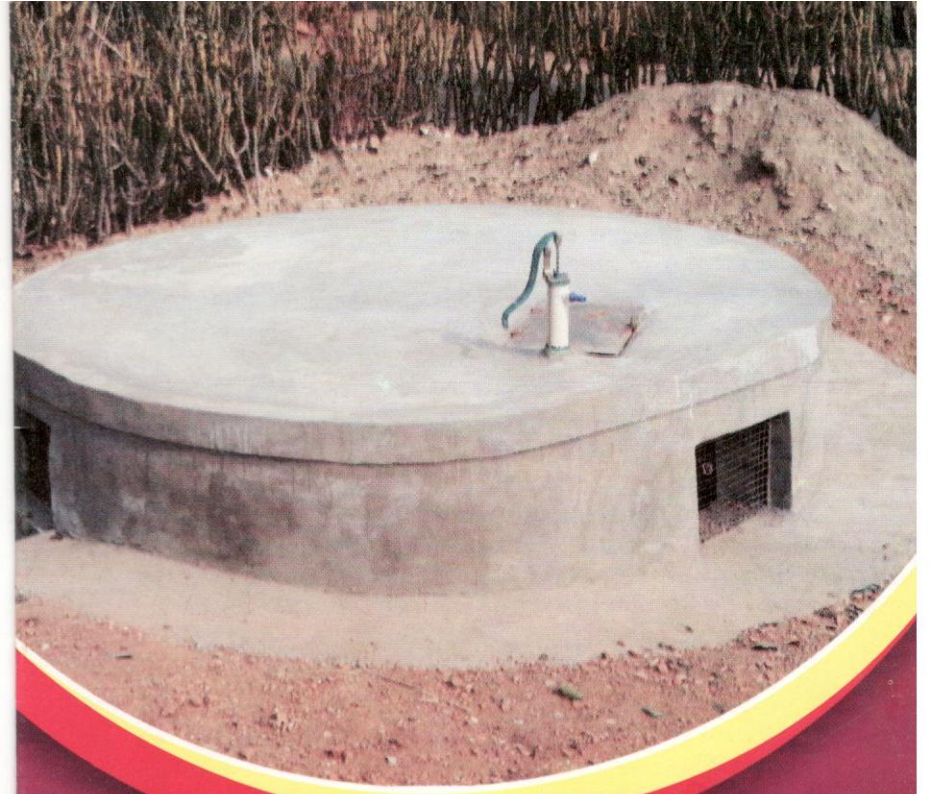

मरुभूमि में मृदा व वर्षा जल संरक्षण व प्रबन्धन

राजेश कुमार गोयल

2016
(पुर्नमुद्रित)

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
आई.एस.ओ. 9001 : 2015
जोधपुर 342 003, राजस्थान

किसी भी फसल की उत्पादकता में मिट्टी व पानी की अहम भूमिका रहती है। समय के साथ–साथ मिट्टी की उत्पादन क्षमता में भी कमी आती है अतः उपजाऊ भूमिव जल के उचित संरक्षण के बिना फसल उत्पादन में दीर्घकालीन स्थायित्व नहीं लाया जा सकता है। स्थानीय संसाधनों के उचित संरक्षण व प्रबन्धन द्वारा ही फसल उत्पादन किया जा सकता है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने पिछले कई वर्षों की शोध के द्वारा वर्षा जल व मृदा संरक्षण की तकनीकों को और अधिक प्रभावशाली व उन्नत बनाया है। संसाधन संरक्षण व प्रबन्धन की इन तकनीकों को अपनाकर विषम परिस्थितियों में भी भरपूर फसल पैदा की जा सकती है।

समोच्च खेती

परम्परागत विधि में प्रायः खेती ढाल के समानान्तर ऊपर से नीचे की जाती है व यह तरीका मृदा व जल क्षरण का एक मुख्य कारण है। यदि समस्त कृषि कार्य एवं बुआई–रोपाई ढाल के अभिलम्ब दिशा में समोच्च रेखा पर किया जाये तो मृदा व जल क्षरण को काफी हद तक कम या रोका जा सकता है। इस विधि में जुताई करते समय ढाल के विपरीत दिशा में सूक्ष्म अवरोधों का निर्माण होता है जो मृदा व जल क्षरण को रोकने में सहायक होता है। मृदा व जल संरक्षण के अतिरिक्त समोच्च खेती मृदा की उर्वरता का भी संरक्षण करती है जिससे फसलों की उपज में वृद्धि होती है।

समतलीकरण एवं मेड़बन्दी

उबड़–खाबड़ भूमि पर वर्षा जल का वितरण कहीं आवश्यकता से अधिक तो कहीं पर आवश्यकता से बहुत कम होता है। ये दोनों ही स्थितियां फसल उत्पादन के लिये बहुत प्रतिकूल है। खेत के समतलीकरण द्वारा वर्षाजल वितरण की इस असमानता को दूर किया जा सकता है। बहुत उबड़–खाबड़ भूमि में समतलीकरण का कार्य 2 से 3 साल में किया जा सकता है। ऊंचें स्थानों से मिट्टी को काट कर निचले स्थानों में जमा करके समतलीकरण का कार्य पूरा किया जा सकता है। समतल सतह से जल का बहाव कम होने के कारण वर्षाजल भूमि में अधिक मात्रा में रिसता है व नमी गहराई तक बनी रहती है। खेत के चारों ओर मेड़ न होने से वर्षा जल अनियन्त्रित रुप से बहकर मृदा का अपरदन कर खेत में अवनालिकायें (Gullies) विकसित कर भूमि को खराब कर सकता है। अतः खेत को समतल कर चारों ओर न्यूनतम 50 से. मी. से 60 से.मी. ऊंची मेंड़ बनाकर वर्षाजल, पोषक तत्व, खाद व बीज को बाहर जाने से रोका जा सकता है। मेड़बन्दी का मुख्य उद्देश्य खेत का पानी खेत में रहना चाहिये।

समोच्च बांधन/वानस्पतिक अवरोध

जिन बड़े खेतों में अधिक ढ़लान के कारण समतलीकरण सभंव नहीं होता है वहां ढ़लान के अभिलम्ब दिशा मे मिट्टी के समोच्च अवरोध (मेड़) बनाकर वर्षाजल के बहाव व मृदा क्षरण को रोका जा सकता है। समान्यतः दो मेड़ों के मध्य 60 से 70 मीटर की दूरी रखी जाती है जो स्थानीय वर्षामान व ढ़लान पर निर्भर करती है। मेड़ 0.75 से 1 मीटर ऊँचें व 1 से 1.5 मीटर चौड़े आधार के बनाये जा सकते है। इन मेड़ों को अधिक मजबूती प्रदान करने के लिये इन पर स्थानीय वनस्पति जैसे मूंजा, सेवण आदि को लगाया जा सकता है। पानी के बहाव के मार्ग में इन मेड़ों के होने के कारण पानी को भूमि में रिसने के लिये अधिक समय मिलता है व खेत में एक समान नमी बनी रहती है। मेड़ों का निर्माण कार्य हमेशा खेत के ऊचें स्थानों से आरम्भ करके निचले स्थानों पर समाप्त किया जाता है लेकिन मेड़ सदैव ढ़लान के अभिलम्ब दिशा में ही बनाये जाते है। मेड़ के निर्माण के लिये मिट्टी को ढ़लान के ऊपर के स्थान से काट कर निचले स्थान पर जमा किया जाता है। प्रत्येक वर्षा के बाद मेड़ों का निरीक्षण किया जाना चाहिये एवं किसी भी प्रकार की दरार या धंसने की स्थिति में मेड़ की तुरंत मरम्मत कर देनी चाहिये। समस्त कृषि कार्य यथा जुताई आदि ढ़लान के अभिलम्ब दिशा में करने चाहिये।

समोच्च नाली

यह तकनीक प्रायः बंजर भूमि या चारागाह से उत्पादन प्राप्त करने के लिये प्रयुक्त की जाती है। इस तकनीक के तहत अधिक ढ़लान वाले खेत या चरागाह में ढ़लान के अभिलम्ब दिशा में समोच्च नाली बनायी जाती है। नाली से निकाली गई मिट्टी ढ़लान की तरफ मेड़ के रुप में डाल दी जाती है। वर्षा होने पर सतही बहाव इस नाली में इकट्ठा हो जाता है जो पौधों को लगाने के लिये प्रारम्भिक अवस्था में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। ढ़लान की तरफ बनाई गई मेंड़ बहते पानी के मार्ग में अवरोध का कार्य करती है। सामान्यतः नाली 0.30 से 0.40 मीटर गहरी व 0.60 से 0.80 मीटर चौडी बनाई जा सकती है। दो नालियों के मध्य 60 से 90 मीटर का अन्तराल पर्याप्त होता है। समोच्च नाली तकनीक विशेषतः ढ़लान वाले चरागाहों में वृक्ष व घास स्थापित करने में काफी सहायक होती है।

खेत में तालाब की तलछट का प्रयोग

बलुई मिट्टी में जल धारण क्षमता बहुत कम होती है इस कारण वर्षा का अधिकांश जल गहरे अन्तः स्त्राव के द्वारा बिना उपयोग के नीचे चला जाता है। वर्षाकाल के दौरान बहाव के साथ तालाबों में चिकनी काली मिट्टी जमा हो जाती है। इस मिट्टी की जल धारण क्षमता बलुई मिट्टी की अपेक्षा ज्यादा होती है। अतः गर्मियों मे तालाबों के खाली होने के बाद इनकी सतही काली मिट्टी को खेतों में बिछा देने से खेतों की बलुई मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ाई जा सकती है व पानी अधिक समय तक फसलों के उपयोग के लिये भूमि में उपलब्ध रहेगा ।

अच्छे जमाव, पौधों की बढ़वार तथा अधिकतम उपज के लिये खेत की जुताई एक आवश्यक कृषि कार्य है। इससे खेत में खड्डे, खरपतवार, मिट्टी में छिपे हानिकारक कीट आदि नष्ट हो जाते है और जैव पदार्थो का भूमि में मिलाव अच्छी तरह से हो जाता है। मिट्टी भुर–भुरी हो जाने से जड़ों का विकास भी अच्छी तरह से होता है और मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है। जुताई हमेशा खेत के ढाल के अभिलम्ब दिशा में करनी चाहिये। इससे मृदा क्षरण व जल के बहाव में काफी कमी आती हैं। संरक्षित व उचित जुताई द्वारा मृदा व नमी के ह्रास में कमी आती है व उर्जा का अपव्यय भी कम हो जाता है।

पट्टीदार सस्यन

पट्टीदार सस्यन (Strip cropping) भूमि एवं जल संरक्षण के दृष्किोण से मरुक्षेत्र में बहुत ही उपयोगी है। इसमें विभिन्न बढ़वार व स्वभाव वाली फसलों की निश्चित कतारों की पट्टियां एकान्तर क्रम में खेत में बोयी जाती है। अनुसंधान के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि यदि तिल की चार कतारों के साथ मोंठ की 6 कतारों की पट्टियां एकांतर क्रम में बोयी जायें तो अधिकतम लाभ मिल सकता है। इसी प्रकार सेवण घास के साथ खरीफ में दलहनी फसलों (मूंग, मोंठ, ग्वार) के पट्टीदार सस्यन से वायु द्वारा मृदा क्षरण को रोकने के साथ–साथ प्रति इकाई क्षेत्र से उपज भी अधिकतम प्राप्त होती है। इस प्रकार मरु क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के सस्यन से अधिकतम उपज एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जल संरक्षण की ऊपर दी गई विधियों के सफल प्रयोग से खरीफ की फसलों की अच्छी उपज के साथ–साथ रबी की फसलों की बुआई के लिए भी नमी मृदा में संरक्षित रहती है।

सतही पलवार

शुष्क क्षेत्रों में उच्च तापमान के द्वारा तीव्र वाष्पीकरण होता है जिससे मृदा में व्याप्त नमी का तेजी से कमी होती है व पौधे नमी के अभाव में सूखने लगते हैं। अतः संचित नमी को बचाये रखने के लिये खेत से निकाले गये खरपतवार व अन्य घास–फूस से सतह पर की गई पलवार मृदा के वातीय व जलीय क्षरण तथा मृदा नमी को बचाने में काफी सहायक होती है। सतही पलवार से भूमि के तापमान में कमी आती है फलस्वरुप जल वाष्पन कम हो जाता है। सतही पलवार के रुप में उपलब्धता के आधार पर फसलों के अवशिष्ट अंश, पत्तियां, सूखी घासें, लकड़ी का बुरादा या पालीथिन की चादरें काम में ली जा सकती हैं। लगभग 6 टन प्रति हेक्टेयर की दर से घास की पलवार लगाने से फसलों की उत्पादकता दुगनी की जा सकती है।

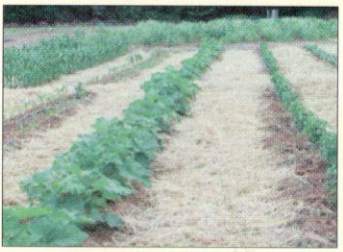

उचित फसलों का चुनाव व समय पर बुआई

मरुस्थलीय क्षेत्रों में फसलोत्पादन पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर करता है अतः इन क्षेत्रों में फसलों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि फसलें ऐसी हो जो कम पानी व कम समय में तैयार हो जाये तथा इनमे सूखा सहन करने की क्षमता हो। मरुस्थल में ऊपरी सतह पर मृदा जल की कमी होने के कारण ऐसे क्षेत्रों में गहरे जड़ों वाली फसलें ज्यादा उपयुक्त रहती हैं। फसलों की बुवाई सही समय पर करनी चाहिये। ऐसा न करने से फसलों की बढ़वार के लिये अनुकूल अवधि कम रह जाती है और फसल के पकने के समय सूखे का सामना करना पड़ सकता है। रेतीली मिट्टियों के लिये बाजरी, मूंग, मोठ, ग्वार आदि फसलें उपयुक्त रहती है। इन फसलों की किस्म विशेष का चुनाव भूमि व उपलब्ध जल आदि के आधार पर किया जा सकता है।

समय पर खरपतवार निकालना

खरपतवार खेत में उपलब्ध जल व पोषक तत्वों को शीघ्रता से ग्रहण करते है फलस्वरुप फसलों को आवश्यक पोषक तत्व व पानी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाते हैं। अतः फसलों को पर्याप्त नमी व पोषक तत्व उपलब्ध कराने हेतु समय पर खेत को खरपतवारों से मुक्त कर देना चाहिए। खरपतवार को उपयुक्त फसल चक्र अपनाते हुए खुरपी, कल्टीवेटर या खरपतवार नाशक दवाईयों का प्रयोग करके नियंत्रित किया जा सकता है।

टिब्बा स्थिरीकरण

थार मरूस्थल में रेतीले टिब्बे बहुतायत में पाये जाते हैं। गर्मी के मौसम में तेज हवाओं के चलने के साथ इन टिब्बों की रेत उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुँच जाती है। यह रेत कृषि योग्य भूमि, मकान, सड़कों आदि के लिये गम्भीर खतरा पैदा कर सकती है। इसलिये इन टिब्बों का स्थिरीकरण बहुत आवश्यक है। टिब्बों का स्थिरीकरण इन पर स्थानीय वनस्पति लगाकर किया जा सकता है। टिब्बों पर वनस्पति को पशुओं से सुरक्षित रखने के लिये टिब्बों के चारों ओर बाड लगा देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त टिब्बों की ओर वायु के आने की दिशा में 5 मीटर गुणा 5 मीटर में शतरंज की विसात के आकार में सूक्ष्म वायु अवरोध स्थापित कर देने चाहिये। सूक्ष्म वायु अवरोधों को स्थापित कर देने के लिये घासों में सेवन व अंजन धामन झाडियों में कैर, फोग, बोर्डी व आक और पेड़ों में बबूल, कुमठ, विलायती बबूल व इजरायली बबूल लगा देने चाहिये।

वायु अवरोधक रक्षक पट्टियाँ

वायु अवरोधक रक्षक पट्टियाँ वास्तव में रोपित पेड़ों और झाड़ियों के सजीव अवरोध होते हैं। ये वायु के वेग, वाष्पीकरण और मृदा क्षरण को रोकने में सहायक होते हैं। रक्षक पट्टियों को वायु की सामान्य दिशा के लम्बवत् पंक्तिबद्ध लगाना चाहिए। वर्ष में यदि वायु एक से अधिक सामान्य दिशा से चलने हो तो एक से अधिक रक्षक पट्टियों का रोपण करना चाहिए। रक्षक पट्टियों से अधिकतम सुरक्षा तब मिलती है जब वायु के चलने की दिशा इनके ठीक लम्बवत् हो। रक्षक पट्टियों की चौडाई 3 से 5 पंक्तियाँ या अधिक हो सकती है। रक्षक पट्टियाँ जितनी अधिक ऊंची होंगी उतनी अधिक दूरी तक वायु के वेग से रक्षा होगी। प्रायः वायु बहने की दिशा में 15 से 20 गुणा अवरोध की ऊँचाई के बराबर तक व वायु आने की दिशा में 5 गुणा पट्टी की ऊँचाई के बराबर की दूरी तक वायु के वेग को कम करती है। 5 पंक्तियाँ वाली रक्षक पट्टी के लिए मध्य पंक्ति के लिए बबूल, सिरस, नीम, शीशम व खेजडी के पेड़ लगाये जा सकते हैं। मध्य पंक्ति के दोनों ओर वाली पंक्तियों में कुमठ, विलायती बबूल व इजरायली बबूल लगा देने चाहिये। बाहरी पंक्तियों में कैर, फोग, बोर्डी की झाड़ियाँ लगायी जा सकती हैं।

नाड़ी

नाड़ी इस क्षेत्र में जल दोहन व संग्रहण की एक प्राचीन पद्धति है। नाड़ी में इकट्ठा किया गया जल पशुओं एवं मानव के पीने के उपयोग में लाया जाता है। अभी भी ज्यादातर ग्रामीण हिस्सों में पीने के पानी के लिए इन्हीं ढ़ाँचों का प्रयोग किया जाता है। नाड़ियों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में उच्च वाष्पीकरण दर एवं रिसाव से हानि, उच्च अवसाद जमाव दर एवं जल का दुरुपयोग है। इस समस्या के निराकरण हेतु संस्थान ने उन्नत नाड़ी के प्रारूप का विकास किया है। इसमें जल अधिग्रहण क्षेत्र में पेड़ पौधे लगाना एवं अवसाद को बहाव क्षेत्र से पहले ही रोकना है। इसके अतिरिक्त नाड़ी में एल.डी.पी.ई. की परत लगा कर जल रिसाव को भी कम किया जा सकता है। प्रदूषण रोकने हेतु नाड़ी क्षेत्र में पशुओं एवं मानवों के आवागमन पर अंकुश लगाया जा सकता है। वाष्पीकरण को कम करने के लिए छायादार वृक्षों का स्थापन काफी प्रभावशाली होता है।

खड़ीन

ऊपरी सतह एवं चट्टानी तल से वर्षा जल बहाव के साथ–साथ चिकनी मिट्टी निचली सतहों पर इकठ्ठी हो जाती है। ऐसे स्थानों पर खेत की निकासी की तरफ मिट्टी के बाँध उचित अधिप्लवन मार्ग (Surpassing arrangement) के साथ यदि बनाये जाए तो इन स्थानों को उपजाऊ खेतों में बदला जा सकता है। इन्हें प्रादेशिक भाषा में खड़ीन कहा जाता है। इस प्रकार की जल दोहन तकनीक एवं भू–उपयोग जैसलमेर जिले में व्यापक है। वर्षा कम होने की स्थिति में जल अधिग्रहण क्षेत्र एवं सिंचित क्षेत्र का अनुपात अधिक हो जाता है।

टांका

टांका एक प्रकार का छोटा ऊपर से ढका हुआ भूमिगत खड्डा होता है इसका प्रयोग मुख्यतः पेयजल के लिये वर्षाजल संग्रहण हेतु किया जाता है। टांका आवश्यकता व उद्देश्य के अनुसार कहीं पर भी बनाया जा सकता है। परम्परागत तौर पर निजी टांके प्रायः घर के आंगन या चबूतरों में बनाये जाते हैं, जबकि सामुदायिक टांकों का निर्माण पंचायत भूमि में किया जाता है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी), जोधपुर ने पिछले दो–तीन दशकों में शोध द्वारा टांके के परम्परागत स्वरुप को बहुउद्देश्यीय, उन्नत व परिष्कृत किया है ।

उन्नत टांका : संरचना एवं निर्माण

टांके या कुण्ड के निर्माण के लिये ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिये जहाँ वर्षा जल स्वतः इकट्ठा होता हो व संग्रहण के लिये प्राकृतिक रुप में पर्याप्त आगोर या पायतान मिल सके। साफ, कठोर व एक समान ढाल वाले आगोर से कम जगह में ज्यादा वर्षा जल संग्रहित किया जा सकता है। परम्परागत चौकोर या आयाताकार टांकों के स्थान पर गोल, बेलनाकार टांके अधिक मजबूत होते हैं व समान क्षमता के लिये कम निर्माण सामग्री की आवश्यकता होती है। परिवार के सदस्यों की संख्या, पशुधन व विशिष्ट जल उपयोग जैसे पौधशाला, घरेलू बागवानी इत्यादि के आधार पर टांके की क्षमता का निर्धारण किया जाता है। जलशास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार टांके में वर्षाजल संग्रहण स्थानीय वर्षामान, आगोर का क्षेत्रफल व आकार, आगोर की प्रकृति आदि पर निर्भर करता है। निजी या सार्वजनिक टांके की जल संग्रहण क्षमता का निर्धारण निम्न सूत्र द्वारा किया जा सकता है ।

आवश्यकता (लीटर) = (परिवार के सदस्य × 2555) + (पशुधन × 9125) + (पौधों की संख्या × 120)

टांका क्षमता (लीटर) = आवश्यकता × 1.10

उपरोक्त सूत्र में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन का जल खर्च पीने व खाना बनाने की आवश्यकतानुसार 7 लीटर लिया गया है। पशुओं के लिये औसतन 25 लीटर पानी

प्रति पशु प्रतिदिन के हिसाब से वार्षिक गणना की गई है। टांके की क्षमता का निर्धारण करने के बाद टांके की गहराई व गोलाई (व्यास) का निर्धारण किया जाता है। सामान्यतः टांके 3 से 5 मीटर गहरे बनाये जाते हैं जो जमीन के अन्दर की मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करते हैं। अधिक कठोर मिट्टी या मुड़ में ज्यादा गहराई के साथ खुदाई की लागत बढ़ जाती है व मजबूती प्रदान करने के लिये अधिक निर्माण सामग्री की आवश्यकता होती है। एक बार गहराई का निर्धारण करने के बाद टांके की गोलाई (व्यास) निम्न सूत्र द्वारा निकाली जा सकती है।

$$\text{गोलाई (मीटर)} = \sqrt{\text{क्षमता (लीटर)} \times 78.7 \times \text{गहराई (मीटर)}}$$

निर्माण कार्य में चूने के स्थान पर सीमेन्ट का प्रयोग करने से टांके की आयु बढ़ जाती है। पचास हजार लीटर तक क्षमता वाले टांकों के निर्माण में 1.25 से 1.5 फीट मोटी सीमेन्ट पत्थर की दीवार व 1 फुट मोटा सीमेन्ट कंकरीट का तला पर्याप्त मजबूती प्रदान कर सकता है। उन्नत टांकों में वर्षाजल के आगमन व अतिरिक्त पानी के निकास के लिये आवक व जावक का प्रावधान होता है। आवक स्थान पर बहाव के साथ आई मिट्टी को रोकने के लिये एक छोटी कुण्डी (सिल्ट ट्रेप) बनाई जाती है। आवक जावक स्थान पर छोटे अंवाछित जानवरों के टांके में प्रवेश पर रोक के लिये उचित आकार की लोहे की जाली लगाई जाती है। आगोर से वर्षा जल को सीधे टांके की बाहरी दीवारों में रिसने से रोकने के लिये टांके के चारों ओर 2 से 2.5 फीट चौडी सीमेन्ट कंकरीट की एक कालर बनाई जाती है। रेगिस्तान की औसत वर्षामान व सामान्य आगोर प्रकृति के अनुसार 50000 लीटर क्षमता के टांके के भरण के लिये 0.5 से 0.6 बीघा आगोर पर्याप्त होता है। टांके के आगोर को साफ, एक समान ढलान वाला व कठोर करके वर्षाजल के बहाव को बढ़ाया जा सकता है। पक्के मकानों या हवेलिओं के निकट बने टांकों में भू–स्थित आगोर के साथ–साथ छतों का पानी भी पाइपों के द्वारा टांके में डाला जा सकता है। भू–स्थित आगोर की तुलना में पक्की छतों से वर्षा जल का ज्यादा बहाव होता है व संग्रहित पानी में गंदगी भी कम होती है। अतः अनुकूल परिस्थितियों में टांका निर्माण करते समय वर्षाजल संग्रहण के लिये छतों से वर्षा जल इकट्ठा करने का भी प्रावधान रखना चाहिए। उन्नत टांकों में संग्रहित जल की निकासी के लिये पारम्परिक रस्सी, बाल्टी के स्थान पर हैण्डपम्प लगाया जा सकता है। इससे न केवल जल की बचत होती है अपितु यह जल निकालने का एक सुरक्षित तरीका भी है।

निर्मित टांका : देखभाल

- साल में कम से कम एक बार टांके की सम्पूर्ण सफाई। यदि उसमें कोई दरार आदि नजर आये तो सीमेन्ट द्वारा उसका उपचार।
- वर्षा पूर्व आगोर की सम्पूर्ण सफाई, एक समान ढाल व उसे दबाकर कठोर बनाना। आर्थिक क्षमता के अनुसार आगोर को सीमेन्ट कंकरीट द्वारा पक्का भी बनाया जा सकता है।
- आवक व जावक स्थान पर लगी जालियों की नियमित सफाई व जंग से बचाव के लिये रंग रोगन आदि।
- पानी में बदबू व जीवाणु आदि से बचाव के लिये वर्ष में एक बार लाल दवा व फिटकरी का प्रयोग।
- टांके के तले को टूटने/फटने से बचाने के लिये टांके में कुछ पानी हमेशा रखें।

प्रकाशक : निदेशक, भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर 342 003
सम्पर्क सूत्र : दूरभाष +91–291–2786584 (कार्यालय)
+91–291–2788484 (निवास), फैक्सः +91–291–2788706
ई–मेल : director.cazri@icar.gov.in
वेबसाईट : http://www.cazri.res.in
सम्पादन समिति : सुभाष कुमार जिन्दल, निशा पटेल, धर्म वीर सिंह, नवरतन पंवार
प्रियब्रत सांतरा, प्रणव कुमार रॉय, राकेश पाठक व श्री बल्लभ शर्मा

काजरी किसान हेल्प लाईन : 0291–2786812

Evergreen 94141 28647